टार्च बेचने वाला

वह पहले चौराहों पर बिजली के टार्च बेचा करता था। बीच में कुछ दिन वह नहीं दिखा। कल फिर दिखा। मगर इस बार उसने अपनी दाढ़ी बढ़ा ली थी और लंबा कुर्ता पहन रखा था।

मैंने पूछा, ''कहाँ रहे इतने दिन? और यह दाढ़ी क्यों बढ़ा रखी है?''

उसने जवाब दिया, ''बाहर गया था।''

दाढ़ी वाले सवाल का उसने जवाब यह दिया कि वह दाढ़ी पर हाथ फेरने लगा।

मैंने कहा, ''आज तुम टार्च क्यों नहीं बेच रहे हो?''

उसने कहा, ''वह काम बंद कर दिया। अब तो आत्मा के भीतर टार्च जल उठा है। ये 'सूरजछाप' टार्च अब व्यर्थ मालूम होते हैं।''

मैंने कहा, ''तुम शायद संन्यास ले रहे हो। जिसकी आत्मा में प्रकाश फैल जाता है, वह इसी तरह हरामख़ोरी पर उतर आता है। किससे दीक्षा ले आए?''

मेरी बात से उसे पीड़ा हुई। उसने कहा, ''ऐसे कठोर वचन मत बोलिए। आत्मा सबकी एक है। मेरी आत्मा को चोट पहुँचाकर आप अपनी ही आत्मा को घायल कर रहे हैं।'' मैंने कहा, ''यह सब तो ठीक है। मगर यह बताओ कि तुम एकाएक बदल कैसे गए? क्या बीबी ने तुम्हें त्याग दिया? क्या उधार मिलना बंद हो गया? क्या साहूकारों ने ज़्यादा तंग करना शुरू कर दिया? क्या चोरी के मामले में फँस गए हो? आख़िर बाहर का टार्च भीतर आत्मा में कैसे घुस गया?''

उसने कहा, ''आपके सब अंदाज़े ग़लत हैं। ऐसा कुछ भी नहीं हुआ है। एक घटना घट गई है, जिसने मेरा जीवन बदल दिया है। उसे मैं गुप्त रखना चाहता हूँ, पर क्योंकि मैं आज ही यहाँ से दूर जा रहा हूँ, इसलिए आपको सारा क़िस्सा सुना देता हूँ।''

आज से पाँच साल पहले की बात है। मैं अपने एक दोस्त के साथ हताश हुआ एक जगह बैठा था। हमारे सामने आसमान को छूता हुआ एक सवाल खड़ा था। वह सवाल था–'पैसा कैसे पैदा करें?' हम दोनों ने उस सवाल की एक-एक टाँग पकड़ी और उसे हटाने की कोशिश करने लगे। हमें पसीना आ गया, पर सवाल हिला भी नहीं। दोस्त ने कहा–''यार, इस सवाल के पाँव ज़मीन में गहरे गड़े हुए हैं। यह उखड़ेगा नहीं। इसे टाल जाएँ।''

हमने दूसरी तरफ़ मुँह कर लिया। पर वह सवाल फिर हमारे सामने आकर खड़ा हो गया। तब मैंने कहा–''यार, यह सवाल टलेगा नहीं। चलो, इसे हल ही कर दें। पैसा पैदा करने के लिए कुछ काम-धंधा करें।'' हम इसी वक़्त अलग-अलग दिशाओं में अपनी-अपनी क़िस्मत आज़माने निकल पड़े। हम दोनों ने वादा किया कि पाँच साल बाद ठीक इसी तारीख़ को इसी वक़्त हम यहीं मिलेंगे।

दोस्त ने कहा–''यार, एक साथ ही क्यों न चलें?'' मैंने कहा–''नहीं। क़िस्मत आज़मानेवालों की जितनी पुरानी कथाएँ मैंने पढ़ी हैं, सबमें वे अलग-अलग दिशाओं में ही गए हैं। साथ जाने में क़िस्मतों के टकराकर टूटने का डर रहता है।''

तो साहब, हम अलग-अलग दिशाओं में चल दिए। मैंने टार्च बेचने का धंधा शुरू कर दिया। चौराहे पर या मैदान में लोगों को इकट्ठा कर लेता और बहुत नाटकीय ढंग से उनसे कहता–''आजकल सब जगह अँधेरा छाया रहता है। रातें बेहद काली होती हैं। अँधेरे में अपना ही हाथ नहीं सूझता। आदमी को रास्ता नहीं दिखता। वह भटक जाता है। उसके पाँव काँटों से बिंध जाते हैं, वह गिरता है और उसके घुटने लहूलुहान हो जाते हैं। उसके आसपास भयानक अँधेरा रहता है। शेर और चीते चारों तरफ़ घूम रहे हैं, साँप ज़मीन पर रेंग रहे हैं। अँधेरा सबको निगल रहा है। अँधेरा घर में भी है। जब आदमी रात को पेशाब करने उठता है और अँधेरे के कारण साँप पर उसका पाँव पड़ जाता है, तो साँप उसे डँस लेता है और वह मर जाता है।''

साहब! आपने तो देखा ही है कि लोग मेरी बातें सुनकर कैसे डर जाते थे। भर-दुपहर में वे अँधेरे के डर से काँपने लगते थे। आदमी को डराना कितना आसान है! जब लोग डर जाते, तब मैं कहता–''भाइयो, यह सही है कि अँधेरा है, मगर उसके विपरीत प्रकाश भी है। वही प्रकाश में आपको देने आया हूँ। हमारी 'सूरज छाप' टार्च में वह प्रकाश है, जो अंधकार को दूर भगा देती है। इसी वक़्त 'सूरज छाप' टार्च ख़रीदो और अँधेरे को दूर भगाओ। जिन भाइयों को टार्च चाहिए, हाथ ऊपर उठाएँ।'' साहब, इस प्रकार मेरे टार्च बिक जाते और मैं मज़े में ज़िंदगी गुजारने लगा।

वायदे के मुताबिक़ ठीक पाँच साल बाद मैं उस जगह पहुँचा, जहाँ मुझे अपने दोस्त से मिलना था। वहाँ दिन-भर मैंने उसकी राह देखी, पर वह नहीं आया। मैंने अपने मन में सोचा कि क्या हुआ? क्या वह भूल गया? या अब वह इस असार संसार में है ही नहीं? मैं उसे ढूँढ़ने निकल पड़ा। एक शाम जब मैं एक शहर में सड़क पर चला जा रहा था, मैंने देखा कि पास के मैदान में ख़ूब रोशनी हो रही है और एक तरफ़ मंच सजा है। लाउडस्पीकर लगे हैं। मैदान में हज़ारों नर-नारी श्रद्धा से झुके बैठे हैं। मंच पर सुंदर रेशमी वस्त्रों से सजे एक भव्य पुरुष बैठे हैं। ये ख़ूब पुष्ट हैं, उनकी सँवारी हुई लंबी दाढ़ी है और पीठ पर लहराते लंबे केश हैं। मैं भी उसी भीड़ में एक कोने में जाकर बैठ गया।

भव्य पुरुष फ़िल्मों के संत लग रहे थे। उन्होंने गुरु के जैसी गंभीर वाणी में प्रवचन शुरू किया। वे इस तरह बोल रहे थे जैसे आकाश के किसी कोने से कोई रहस्यमय संदेश उनके कान में सुनाई पड़ रहा है, जिसका वे भाषण दे रहे हैं। वे कह रहे थे–''मैं आज मनुष्य को एक घने अंधकार में देख रहा हूँ। उसके भीतर कुछ बुझ-सा गया है। यह युग ही अंधकारमय है। यह सर्वग्राही अंधकार संपूर्ण विश्व को अपने उदर में छिपाए है। आज मनुष्य इस अंधकार से घबरा उठा है। वह पथभ्रष्ट हो गया है। आज आत्मा में भी अंधकार है। अंतर की आँखें ज्योतिहीन हो गई हैं। वे उसे भेद नहीं

पा रही हैं। मानव-आत्मा अंधकार में घुट रही है। मैं देख रहा हूँ कि मनुष्य की आत्मा भय और पीड़ा से त्रस्त है।'' इसी तरह वे बोलते जा रहे थे और लोग स्तब्ध होकर सुन रहे थे। मेरी हँसी छूटने वाली थी। एक-दो बार दबाते-दबाते भी मेरी हँसी छूट गई और पास बैठे श्रोताओं ने इसके लिए मुझे डाँटा।

भव्य पुरुष प्रवचन के अंत पर पहुँचते हुए कहने लगे–''भाइयो और बहनो, डरो मत। जहाँ अंधकार है, वहीं प्रकाश है। प्रकाश बाहर नहीं है, उसे अंतर में खोजो। अंतर में बुझी उस ज्योति को जगाओ। मैं तुम सबका उस ज्योति को जगाने के लिए आह्वान करता हूँ। मैं तुम्हारे भीतर उसी शाश्वत ज्योति को जगाना चाहता हूँ। मेरे 'साधना मंदिर' में आकर उस ज्योति को अपने भीतर जगाओ।'' यह सुनकर मैं खिलखिलाकर हँस पड़ा। पास बैठे लोगों ने मुझे धक्का देकर वहाँ से भगा दिया। मैं मंच के पास जाकर खड़ा हो गया।

भव्य पुरुष मंच से उतरकर कार में बैठने वाले थे तभी मैंने उन्हें ध्यान से एवं पास से देखा। उनकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी, इसलिए मैं थोड़ा झिझका। पर मेरी तो दाढ़ी नहीं थी। मैं तो उसी मौलिक रूप में था। उन्होंने मुझे पहचान लिया। बोले–''अरे तुम!'' मैं पहचानकर बोलने ही वाला था कि उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर मुझे कार में बिठा लिया। मैं फिर कुछ बोलने लगा तो उन्होंने कहा–''बँगले तक कोई बातचीत नहीं होगी। वहीं ज्ञान-चर्चा होगी।'' मुझे समझ आ गया कि यहाँ ड्राइवर है इसलिए बात नहीं करना चाहते। बँगले पर पहुँचकर मैंने उसका ठाठ देखा। उस वैभव को देखकर मैं थोड़ा झिझका, पर तुरंत ही मैंने अपने उस दोस्त से खुलकर बातें शुरू कर दीं।

मैंने कहा–''यार, तू तो बिलकुल बदल गया है।''

उसने गंभीरता से कहा–''परिवर्तन जीवन का अनंत क्रम है।''

मैंने कहा–''अरे! फ़िलासफ़ी मत बघार। यह बता कि तूने इतनी दौलत पाँच वर्षों में कैसे कमा ली?''

उसने पूछा–''तुम इन वर्षों में क्या करते रहे?''

मैंने कहा–''मैं तो घूम-घूमकर टार्च बेचता रहा। सच बता, क्या तू भी टार्च का व्यापारी है?''

उसने कहा–''तुझे क्या ऐसा ही लगता है? तुझे ऐसा क्यों लगता है?'' मैंने उसे बताया कि जो बातें मैं कहता हूँ; वही तू कह रहा था। मैं सीधे ढंग से कहता हूँ, तू उन्हीं बातों को रहस्यमय ढंग से कहता है। मैं अँधेरे का डर दिखाकर लोगों को टार्च बेचता हूँ। तू भी अभी लोगों को अँधेरे का डर दिखा रहा था, तू भी अवश्य ही टार्च बेचता है।''

उसने कहा–''तुम मुझे नहीं जानते, मैं टार्च क्यों बेचूँगा। मैं साधु, दार्शनिक और संत कहलाता हूँ।''

मैंने कहा–''तुम कुछ भी कहलाओ, बेचते तुम टार्च ही हो। तुम्हारे और मेरे प्रवचन एक जैसे हैं।

चाहे कोई दार्शनिक बने, संत बने या साधु बने, अगर वह लोगों को अँधेरे का डर दिखाता है, तो अवश्य ही अपनी कंपनी का टार्च बेचना चाहता है। तुम जैसे लोगों के लिए हमेशा ही अंधकार छाया रहता है। बताओ, हज़ारों में तुम्हारे जैसे किसी आदमी ने कभी भी यह कहा है कि आज दुनिया में प्रकाश फैला है? कभी नहीं कहा। क्यों? इसलिए कि उन्हें अपनी कंपनी का टार्च बेचना है। मैं स्वयं भर-दुपहर में लोगों से कहता हूँ कि अंधकार छाया है। अब तू बता किस कंपनी का टार्च बेचता है?''

मेरी बातों ने अब उसे ठिकाने पर ला दिया था। उसने सहज ढंग से कहा–''तेरी बात ठीक ही है। मेरी कंपनी नई नहीं है, सनातन है।'' मैंने पूछा–''कहाँ है तेरी कंपनी? नमूने के लिए एकाध टार्च तो दिखा। क्या उसकी बिक्री 'सूरज छाप' टार्च से बहुत ज़्यादा है।''

उसने कहा–''उस टार्च की कोई कंपनी नहीं है। वह बहुत सूक्ष्म है। मगर क़ीमत उसकी बहुत मिल जाती है। तू एक-दो दिन रह, तो मैं तुझे सब समझा दूँगा।''

साहब मैं दो दिन उसके पास रहा। तीसरे दिन 'सूरज छाप' टॉर्च की पेटी को नदी में फेंककर मैंने नया काम शुरू कर दिया।

वह अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरने लगा। बोला–''बस एक महीने की देर और है।''

मैंने पूछा–''तो अब कौन-सा धंधा करोगे?''

उसने कहा–''धंधा वही करूँगा, यानी टार्च बेचूँगा। बस कंपनी बदल रहा हूँ।''